



THE TIMES OF INDIA

Date: 29-08-20

Rebuilding a sustainable economy post Covid requires a long-term strategy, not just short-term stimulus

Chandra Bhushan, [The writer is CEO, International Forum for Environment, Sustainability and Technology (iFOREST)]



The global economy is in recession, and it is predicted to be more destructive than the Great Depression of 1929 and the Global Financial Crisis (GFC) of 2007. India too has been hit hard – tens of millions have lost their jobs, and the economy is projected to shrink by 4-9% in 2020-21. The last time the Indian economy contracted by more than 5% was in 1979 when the entire country was devastated by a once in a century drought (and some regions with floods).

Both Morarji Desai's and Charan Singh's governments fell, and we had mid-term elections which brought Indira Gandhi back into power. The fallout of this political upheaval was the founding of the Bharatiya Janata Party in early 1980, which successfully challenged the Congress and came to power within two decades. I believe that the India in which we live in today was in many ways created in 1979. The question is: What kind of India will the 2020 economic recession create? And, can we steer the 'new' India towards a more just, equitable and sustainable society?

A defining feature of the current economic crisis is the unprecedented fiscal and monetary stimulus packages being rolled out by the governments to provide relief and revive the economy. According to the International Monetary Fund, the total stimulus package for G20 countries averaged 12.1% of GDP – many times more than GFC. India too has announced a stimulus package worth 10% of GDP (though there are opposing views on this number). A quick analysis of the stimulus packages shows that they are primarily targeted to revive the current economy; hardly any country has thought about the long-term transition.

In India too, the focus is on the existing 'brown economy' and shovel-ready projects. The attention on the immediate crisis has also relegated climate and environmental concerns to the background. This is evident in the increasing plastic pollution and investments in the fossil fuel industry. Regulatory changes in the environment and labour sectors have also been proposed for the 'ease of doing business'. While there is nothing wrong in short-term stimulus packages to keep the current economy alive, they must not be environmentally destructive. On the other hand, we also have to ensure that the long-term economic recovery takes into account the social and environmental crisis the world is facing today.

In other words, we must differentiate between a short-term stimulus to jumpstart an economy and a longer-term strategy to transition to a sustainable society. While the former mostly requires fiscal and

monetary support, the latter requires long-term investments and serious pricing and policy reforms. The current economic crisis offers us a once in a lifetime opportunity to roll out a long-term strategy along with stimulus packages in core sectors:

- **Make agriculture sustainable:** Agriculture accounts for 50% land, 85% water, uses a massive amount of chemicals and provides low-income livelihood to 50% of the population. Agriculture is central to building a sustainable society.
- **Transform the energy sector:** We are at a cusp of change in the energy sector. With stimulus and R&D, we can build a new energy architecture based on renewable electricity, battery storage, smart grids and hydrogen fuel for industries.
- **Build resilient infrastructure:** Massive amount of money will be spent by the government to build roads, airports, buildings etc as part of the stimulus package. We must make them 'green'. Instead of roads, we should prioritise railways; instead of concrete jungles, we must build sustainable cities.
- **Invest in nature:** Reversing deforestation and desertification and enhancing soil, wetlands and forests will build resilience against climate change and also provide massive livelihood opportunities.
- **Support local and small businesses:** For jobs, sustainability and resilience of the supply chain, local small businesses are going to be the key. Government policies must support the development of efficient and green small businesses.
- **Invest in social capital and governance:** None of the above would be possible without an educated and healthy society and good governance.

If we consider the experience of the past, then the economic recovery is going to be a long haul. The New Deal enacted by Franklin Roosevelt to respond to the Great Depression lasted for seven years (1933-39). Rebuilding in India will also need time and money. We must spend these rethinking about the type of economy and social system we need and want in the future.



Date: 29-08-20

व्यक्ति की बजाय न्यायिक व्यवस्था के सुधार पर मंथन हो

विराग गुप्ता, (सुप्रीम कोर्ट के वकील)



सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद सुशांत सिंह राजपूत के मामले की सीबीआई, ईडी और अब नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो द्वारा मुस्तैदी से जांच हो रही है। फिल्मी सितारों से जुड़ा निजी मामला अब मीडिया ट्रायल की वजह से देश का सबसे बड़ा मुद्दा बन गया। चार साल पहले अरुणाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री कलिखो पुल ने आत्महत्या कर ली थी। 60 पेज के सुसाइड नोट के हर पेज में दस्तखत करके उन्होंने अफसरों, वकीलों, जजों और राजनेताओं के भ्रष्ट तंत्र का बड़ा खुलासा किया था। उस मामले में राज्यपाल की अनुशंसा के बावजूद मुख्यमंत्री की आत्महत्या के लिए जिम्मेदार भ्रष्ट तंत्र के खिलाफ न तो जांच हुई और न ही कोई कार्रवाई हुई। सुशांत की तर्ज पर कलिखो और बाद में उनके बेटे की हत्या/आत्महत्या के कारणों की सही जांच होती तो आज न्यायपालिका की साख पर इतने पैसे सवाल नहीं उठते? अवमानना के ये मामले किसी एक वकील या

जज के बीच माफी या सजा से खत्म नहीं हो सकते। पिछले पांच सालों में सुप्रीम कोर्ट ने न्यायिक व्यवस्था में सुधार के पांच महत्वपूर्ण बिंदुओं पर महत्वपूर्ण आदेश पारित किए, लेकिन उन पर अमल नहीं होने से अनेक बवंडर हो रहे हैं। इन मामलों के बहाने अदालती व्यवस्था का मंथन हो तो न्यायिक सुधारों के अमृत से पूरा देश लाभान्वित हो सकता है।

1. हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट के जजों की भर्ती में मनमानी से भाई-भतीजावाद पनपता है, जो न्यायिक भ्रष्टाचार का बड़ा कारण है। इसे ठीक करने के लिए राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (एनजेएसी) का कानून बनाया गया, जिसे सुप्रीम कोर्ट के पांच जजों की बेंच ने पांच साल पहले खारिज कर दिया। न्यायिक व्यवस्था की सड़ांध को कम करने के लिए सुप्रीम कोर्ट के जज कुरियन जोसफ ने उस फैसले में ग्लास्त्नोव (पारदर्शिता) और पेरोस्ट्रोइका (पुनर्निर्माण) को लागू करने की बात कही थी। पांच साल बीत गए, लेकिन मेमोरेंडम ऑफ प्रोसीजर यानी एमओपी में माध्यम की व्यवस्था में कोई सुधार नहीं हुआ।

2. संसदीय समिति ने 1964 में निचली अदालतों में भ्रष्टाचार की बात कही थी। उसके 50 साल बाद सुप्रीम कोर्ट के अनेक चीफ जस्टिस ने ऊंची अदालतों में बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार को स्वीकार किया। संविधान के तहत जजों को सिर्फ महाभियोग की प्रक्रिया से ही हटा सकते हैं। 1991 में संविधान पीठ ने एक अजब फैसला दिया था, जिसके बाद चीफ जस्टिस की इजाजत के बगैर भ्रष्टाचार के मामलों में जजों के खिलाफ कोई एफआईआर दर्ज नहीं हो सकती। पिछले 70 सालों में भ्रष्टाचार के अनेक आरोप सिद्ध होने के बावजूद, एक भी जज महाभियोग के तहत नहीं हटाया गया और न ही आपराधिक कार्रवाई हुई। इस पूरी बहस में यह समझना जरूरी है कि 10% या 20% जज भले ही भ्रष्ट हों, लेकिन बकाया 80% जज अभी भी मेहनती और ईमानदार हैं। अच्छे लोगों का सिस्टम पर भरोसा बना रहे, इसके लिए दागी जजों के खिलाफ कठोर कार्रवाई जरूरी है।

3. तीन करोड़ से ज्यादा लंबित मुकदमों की वजह से समाज त्रस्त, अर्थव्यवस्था ध्वस्त है। सीनियर एडवोकेट्स की वजह से वीआईपी मामलों का फैसला कुछ हफ्तों में हो जाता है, लेकिन आम जनता की झोली में तारीख ही आती है। अदालतों की मौखिक बहस और कार्यवाही का पूरा रिकॉर्ड रखा जाए या फिर संसद की तरह कार्यवाही का सीधा प्रसारण हो तो न्यायिक सिस्टम जवाबदेह बनेगा। थिंक टैंक सीएससी के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने 2018 में कहा था कि अदालतों की सड़ांध को दूर करने के लिए सीधे प्रसारण की व्यवस्था प्रभावी हो सकती है। लॉकडाउन की मजबूरी में अदालतों में डिजिटल माध्यम से सुनवाई जरूर शुरू हो गई, लेकिन सीधे प्रसारण की औपचारिक व्यवस्था अभी तक नोटिफाई नहीं हुई।

4. मुकदमों की मनमाफिक लिस्टिंग और मास्टर ऑफ रोस्टर जैसे मुद्दों पर सुप्रीम कोर्ट हमेशा विवादों के घेरे में रहता है। कुछ मुकदमों पर ताबड़तोड़ सुनवाई और फैसला हो जाता है, जबकि शांति भूषण के हलफनामे या गोविंदाचार्य की सीधे प्रसारण की याचिका पर सुनवाई फाइलों के तले दबी रहती है। मामलों की लिस्टिंग, बेंच के गठन, सुनवाई के क्रम और रोस्टर आदि के सही नियमन और क्रियान्वयन के लिए सुप्रीम कोर्ट नियमों में संशोधन करके समुचित व्यवस्था बने तो फिर मनमर्जी और भ्रष्टाचार पर रोक लग सकेगी।

5. प्रशांत भूषण मामले में सुप्रीम कोर्ट के आदेश के पैरा 67 में आपातकाल को लोकतंत्र का काला अध्याय बताया गया है। ढाई साल पहले सुप्रीम कोर्ट के 4 जजों ने प्रेस कॉन्फ्रेंस करके लोकतंत्र को खतरे की बात कही थी। न्यायिक व्यवस्था में माफिया तंत्र के दबाव का हल्ला मचाकर तत्कालीन चीफ जस्टिस गोगोई ने छुट्टी के दिन सुनवाई करके, जस्टिस पटनायक को जांच का जिम्मा सौंपा। अपराधी, भ्रष्ट अफसर और नाकाम सरकारों पर न्याय का चाबुक चलाने के बाद अब न्याय की देवी खुद का घर ठीक करें तो जजों का इकबाल ज्यादा बढ़ेगा।

अवमानना के नाम पर विरोध को कुचलने से, जजों को तात्कालिक राहत भले ही मिल जाए, लेकिन न्यायपालिका का इकबाल बुलंद करने के लिए बुनियादी न्यायिक सुधारों की पूरे देश को जरूरत है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:29-08-20

आबादी (एवं अन्य) विभाजन

टी. एन. नाइनन

कोविड-19 के आंकड़ों में लगातार हो रही वृद्धि और उसके भौगोलिक विस्तार को देखते हुए इस बात में संदेह उत्पन्न हो गया है कि हर दस वर्ष में होने वाली जनगणना का काम समय पर हो सकेगा। इससे इतर हमें इस बात का लगभग अनुमान है कि 1 मार्च को आंकड़ा क्या होगा? राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग की तकनीकी समिति के मुताबिक उस वक्त देश की आबादी करीब 1.36 अरब होगी। संयुक्त राष्ट्र के अनुमान प्रायः भारत की जनगणना के आधिकारिक आंकड़ों से 4 करोड़ ज्यादा हैं। यानी किसी भी तरह सन 2011 से 2021 के दरमियान देश की आबादी में 15 करोड़ का इजाफा

होगा जो सन 1971-81 के बाद किसी एक दशक की सबसे धीमी वृद्धि है। यह वृद्धि 12.6 फीसदी होगी जो कि सन 1970 और 1980 के दशक की वृद्धि दर की तुलना में करीब आधी और आजादी के बाद सबसे धीमी वृद्धि होगी। खासतौर पर प्रति महिला, संतानों का औसत गिरकर 2.2 फीसदी से नीचे जा चुका होगा। इस तरह देखें तो भारत जनसंख्या वृद्धि के एक अहम उभार को पार कर चुका होगा। इस परिदृश्य के मुताबिक भारत एक और दशक तक चीन (आबादी 1.44 अरब) से कम आबादी वाला देश बना रहेगा। पहले जताए गए पूर्वानुमान इसके विपरीत थे। मौजूदा सदी के मध्य में पहुंचने के ठीक बाद भारत की आबादी 1.6 अरब के उच्चतम स्तर पर पहुंचनी चाहिए और उसके बाद इसमें गिरावट आनी शुरू होगी। अंतरराष्ट्रीय अनुमानों में पहले कहा गया था कि 2060 में 1.72 अरब के आंकड़े के बाद ऐसा होगा और बाद में संजीव सान्याल (अर्थशास्त्री और वित्त मंत्रालय के मुख्य आर्थिक सलाहकार) और अन्य के सवालों के बाद इसे घटाकर 1.65 अरब किया गया। भविष्य में इसमें और कमी आ सकती है। इन रुझानों के निहितार्थ विचार करने लायक हैं। जन्म दर में गिरावट के साथ नए विद्यालय जाने वाले बच्चों की तादाद पहले ही 2.5 करोड़ सालाना से कम हो रही है। दूसरी ओर वरिष्ठ नागरिकों की तादाद में इजाफा होगा। हमें कम विद्यालयों और अधिक अस्पतालों और वृद्धाश्रमों की आवश्यकता होगी। अगली चुनौती शहरी क्षेत्र में होगी। देश के दक्षिण और पश्चिम में आबादी का आधा हिस्सा 16 वर्ष में शहरीकृत हो जाएगा। नगरीय शासन को और अधिक अधिकार देने होंगे। बड़े पश्चिमी शहरों की तरह यदि प्रत्यक्ष मेयर निर्वाचन की व्यवस्था लाई जाती है तो शहरी प्रशासन के कुछ मुखिया मुख्यमंत्रियों की तरह महत्वपूर्ण हो जाएंगे। राज्य सरकारें स्वाभाविक रूप से बदलाव का विरोध करेंगी। शहर केंद्रित राजनीतिक दल (जैसी कभी शिवसेना थी) सामने आएंगे और नीचे से दबाव बनाएंगे। केंद्र को इसके चलते ऊपर बदलाव करना होगा। इस प्रकार शहरों के नियोजन और प्रबंधन में तब्दीली आएगी। बेकायदा फैलाव की जगह घनी बसाहट होगी ताकि सार्वजनिक परिवहन को बढ़ावा मिले, सामुदायिक दूरी कम करने के लिए मिश्रित उपयोगिता वाले क्षेत्र, विकास के लिए फंड जुटाने के क्रम में संपत्ति कर लगाने में समझदारी बरतनी होगी, बिल्डर लॉबी को अंकुश में रखते हुए सार्वजनिक जगहों और संस्थानों के लिए प्रावधान करने होंगे, जमीन को बेकार करने वाले नियमों को रद्द किया जाएगा वगैरह। पारिवारिक परिसर से बड़े विनिर्माण उद्योगों को बाहर रखना होगा ताकि हवा साफ रहे। महानगरों के गैर किफायती बंदरगाह मसलन कोलकाता आदि को बंद कर उपयोगी अचल संपत्ति को मुक्त करना होगा। उत्तर-दक्षिण का अंतर भी है। तकनीकी समिति के मुताबिक सन 2011 से 36 तक की चौथाई सदी में दक्षिण भारत के सभी राज्यों की आबादी जितनी नहीं बढ़ेगी उससे अधिक लोग बिहार में बढ़ जाएंगे। कुल आबादी में उत्तर प्रदेश और बिहार की हिस्सेदारी 25 फीसदी से बढ़कर 30 फीसदी हो जाएगी। परंतु आबादी के आंकड़े जहां एक दिशा में जाएंगे, वहीं आय दूसरी दिशा में। दक्षिण और पश्चिम के राज्यों की प्रति व्यक्ति आय पहले ही हिंदी क्षेत्र के राज्यों की तुलना में तीन गुना है। इसमें और इजाफा होगा और प्रवासन के जरिये आय और आबादी के अंतर को पाटा नहीं जा सकता। इससे दो चुनौतियां उभरेंगी। राजकोषीय हस्तांतरण (किस राज्य को कितना हिस्सा मिलना चाहिए) पहले ही वित्त आयोग के लिए मुश्किल खड़ी कर रहा है। भविष्य में संसदीय प्रतिनिधित्व में भी बदलाव होगा। यदि उत्तर और दक्षिण के बीच राजनीतिक अंतर पैदा होता है तो झगड़े बढ़ेंगे। उत्तर भारत में पहले ही भारतीय जनता पार्टी का दबदबा है जबकि दक्षिण में क्षेत्रीय दलों का वर्चस्व है। इन हालात से बचाव के लिए हिंदी प्रदेशों में शासन प्रणाली के मानक में सुधार होना चाहिए और जाति का वर्चस्व घटना चाहिए। इसके लिए शहरीकरण जरूरी है। नए शहर, औद्योगिक समूह और उत्कृष्टता केंद्र उभरने चाहिए। उत्तर प्रदेश को तीन हिस्सों में बांटने की आवश्यकता है। दूरदराज राज्यों तक बेहतर संपर्क भी जरूरी होगा। अभिसरण (कन्वर्जंस) जो अब तक दूरी की कौड़ी है, उसे हकीकत में बदलना होगा।

Date:29-08-20

नगालैंड शांति समझौते की राह में विश्वास का संकट

आदिति फडणीस

नगालैंड के राज्यपाल आर एन रवि को जरूर बुरा लग रहा होगा। उप राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार रह चुके रवि ने नगालैंड में सक्रिय उग्रवादी संगठनों को समझौता प्रारूप पर सहमत करने के लिए पांच साल लगाए हैं। इस समझौते पर भारत सरकार और नैशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नगालैंड- आइजक मुइवा गुट (एनएससीएन-आईएम) ने हस्ताक्षर किए थे। अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद रवि का जिक्र गृह मंत्रालय में महज संदर्भ के रूप में किया गया है। मंत्रालय की एक फाइल में वाई डी गुंडेविया (पूर्व विदेश सचिव), एल पी सिंह (पूर्व गृह सचिव), के पद्मनाभैया (पूर्व गृह सचिव) और आर एस पांडेय (नगालैंड के पूर्व मुख्य सचिव) के साथ रवि का भी नाम लिया गया है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और एनएससीएन-आईएम के प्रमुख थुइंगलेंग मुइवा ने वर्ष 2015 में नगा पहचान एवं संप्रभुता के मुद्दे का समाधान करने वाले प्रारूप समझौते पर हस्ताक्षर किए थे। इससे देश में उग्रवाद के सबसे पुराने गढ़ में शांति स्थापना की उम्मीदें जगी थीं। हालांकि इस समझौते के ब्योरे के बारे में संसद तक को जानकारी नहीं दी गई।

आज पांच साल बाद एनएससीएन-आईएम नगा वार्ताकार के रूप में रवि की जगह किसी और को लाने की मांग कर रहा है। उसने आरोप लगाया है कि रवि ने उसे उगाही करने वाला और ठग संगठन बताकर छवि खराब करने की कोशिश की है। दूसरी तरफ रवि ने एक आदेश जारी कर सभी सरकारी कर्मचारियों से यह घोषणा करने को कहा है कि उनके किसी भी रिश्तेदार का एनएससीएन-आईएम या दूसरे उग्रवादी संगठन से कोई नाता नहीं है। दरअसल दोनों पक्षों के बीच विश्वास की खाई गहरी एवं चौड़ी हो चुकी है। ऐसा लगता है कि एनएससीएन-आईएम की जीत होने वाली है क्योंकि रवि को वार्ताकार के दायित्व से मुक्त करने की अटकलें चलने लगी हैं।

आखिर ऐसी स्थिति कैसे आ गई? रवि ने 17 अगस्त, 2019 को कहा था कि प्रधानमंत्री ने उनसे प्रारूप समझौते पर चल रही वार्ता तीन महीने में पूरा करने को कहा है। उन्होंने कहा था, 'पिछले पांच वर्षों में हमने सभी अहम मुद्दों का सुविधाजनक समाधान निकाल लिया है।' लेकिन इस आश्वस्तकारी माहौल के पीछे एक बेचैनी भी थी। प्रधानमंत्री के व्यग्र होने के अलावा बातचीत की मियाद तय कर दी गई थी और रवि पर एनएससीएन को हस्ताक्षर के लिए राजी कराने का दबाव भी था। उन्होंने सोचा कि मामला लगभग निपट चुका है। आखिर इस करार के तहत एनएससीएन नगा संप्रभुता का मुद्दा छोड़ने के अलावा भारतीय संघ के भीतर समाधान के लिए भी राजी दिख रहा था। लेकिन मामला कहीं अधिक जटिल था। सरकार ने 5 अगस्त, 2019 को अनुच्छेद 370 के तहत जम्मू कश्मीर को हासिल विशेष दर्जे को खत्म कर दिया। इस कदम से पूर्वोत्तर के राज्य भी अनुच्छेद 371 के तहत मिले संवैधानिक संरक्षण बरकरार रहने को लेकर आशंकित हो गए। हालांकि गृह मंत्री अमित शाह ने संसद में बयान देकर पूर्वोत्तर राज्यों को आश्वस्त करने की कोशिश की लेकिन यह नाकाफी साबित हुआ। एनएससीएन-आईएम ने भी प्रारूप समझौते के प्रावधानों पर नए सिरे से गौर करना शुरू कर दिया। आखिर वह नगा लोगों के लिए जिस अलग संविधान एवं झंडे की मांग करता रहा है जम्मू कश्मीर को उसी से वंचित किया गया था। रवि की अपनी मजबूरियां थीं। उन्हें अक्टूबर 2019 तक एक समझौता हासिल करना था। लेकिन यह तभी हो सकता था जब एनएससीएन-आईएम के पास हस्ताक्षर के अलावा कोई चारा ही नहीं बचे। ऐसी स्थिति में रवि ने पुरानी तरकीब अपनाते हुए विरोधी धड़ों को अलग बैनर एनएनपीजी के तहत ला खड़ा किया। इस

समूह ने प्रारूप समझौते का समर्थन करने के अलावा उस पर दस्तखत करने की हामी भी भरी। रवि को उम्मीद थी कि अलग-थलग पडने के दबाव में एनएससीएन वार्ता के लिए तैयार हो जाएगा।

लेकिन एनएससीएन-आईएम को अहसास हो गया कि सरकार उसे कमतर करने की कोशिश कर रही है लिहाजा उसने भी दबाव बनाना शुरू कर दिया। इसके मुखिया मुड़वा ने फरवरी में नॉर्थ ईस्ट लाइव को दिए एक साक्षात्कार में कहा था कि पुराने मसले अभी तक सुलझाए नहीं जा सके हैं। सभी नगाओं के लिए अलग नगालिम की स्थापना, एक सरकार, अपना झंडा और संविधान जैसी मांगों पर वह अड़े थे। इस पर रवि ने कहा कि इसकी पेशकश ही नहीं की गई है। रवि ने एक साक्षात्कार में कहा, 'वार्ता संपन्न करने में हो रही देरी के लिए पूरी तरह एनएससीएन-आईएम जिम्मेदार है। वह समाधान के लिए तैयार नहीं दिखता है और पहले से सहमत बिंदुओं की अलग व्याख्या कर देर करने की तरकीब अपना रहा है। एक सांस्कृतिक इकाई का गठन कर नगा पहचान कायम रखने पर सहमति बनी थी लेकिन अब वह इसे राजनीतिक एवं कार्यकारी भूमिका भी देने की बात कर रहा है।' हाल ही में एनएससीएन-आईएम ने 'वार्ताकार के रूप में रवि की कारगुजारियां' शीर्षक से एक पुलिंदा जारी किया है। इसमें संसद की स्थायी समिति को रवि की तरफ से पेश रिपोर्ट में नगा मसले का समाधान भारत के भीतर तलाशने की बात करने के लिए उन पर हमले बोले गए हैं। राज्यपाल की तरफ से राज्य सरकार को लिखे गए पत्र में विद्रोही संगठनों को 'सशस्त्र समूह' बताए जाने पर भी एतराज जताया गया। उसका कहना है कि रवि ने इन संगठनों पर समानांतर सरकार चलाने के आरोप भी लगाए हैं। ऐसी स्थिति में एनएससीएन-आईएम ने अपनी नाराजगी को खुलकर जाहिर करते हुए कहा कि अब वह रवि को वार्ताकार के तौर पर नहीं देखना चाहता है। सरकार ने भी मौके की नजाकत को समझा है और हाल ही में इस मसले पर दिल्ली में हुई बैठक में रवि नदारद रहे। प्रत्यक्ष रूप में देखें तो एनएससीएन-आईएम को मांगी हुई चीज मिल गई है। इस तरह उसने अपने विरोधियों को अपनी ताकत का अहसास भी करा दिया है। अगला कदम रवि को उठाना है। यह समय महत्वपूर्ण होने के साथ संवेदनशील भी है। अगर घटते जनसमर्थन के बावजूद एनएससीएन- आईएम फिर से हथियार उठाता है तो उसे फिर से बातचीत की मेज पर लाया जा सकता है।
